चूहों की कथा, बच्चों की व्यथा

अरविन्द गुप्ता

टीचर का बच्चों के प्रति रवैया, उनके प्रति विश्वास बहुत मायने रखता है। आमतौर पर शिक्षक कुछ चुनिंदा बच्चों से ही प्रश्नों के उत्तर पूछते हैं। अक्सर प्रश्न होशियार बच्चों से ही पूछे जाते हैं। इससे इन बच्चों का हौसला और बुलंद होता है और कमजोर बच्चे अपनी अज्ञानता को और अधिक कोसते हैं। इसमें सबसे अधिक नुकसान गरीब, दलित बच्चों को होता है जिनके घरों में पढ़ाई-लिखाई की कोई परंपरा नहीं होती। शिक्षक पढ़े-लिखे उच्च-जाति के बच्चों से ही अधिक प्रश्न पूछते हैं। इससे निश्चित रूप से उन्हें ज्यादा बढ़ावा मिलता है और उनका मनोबल ऊंचा होता है। पर साथ-साथ गरीब, निचली जाति के बच्चे और हाशिए पर आ खड़े होते हैं। विज्ञान के अनुसार मानव-जाति के 99 प्रतिशत से अधिक जीन्स लगभग एक-जैसे होते हैं। जीनोम प्रोजेक्ट का यही संदेश है। 1970 के दशक में एक अनूठी पुस्तक छपी 'पिगमेलियन इन द क्लासरूम'। नीचे की सच्ची कहानी इसी पुस्तक पर आधारित है। प्रयोग से साफ स्पष्ट है कि शिक्षक की मान्यताओं का बच्चों पर बेहद असर पड़ता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि अच्छे और बुरे छात्र शिक्षक ही बनाता है।

अमरीका में मनोविज्ञान के प्रोफेसर रॉबर्ट रोजनथाल ने एक बार अपने छात्रों के दो समूहों को बुलाया। उन्होंने प्रत्येक समूह को तीस-तीस चूहे दिए और साथ में भूल-भुलैया वाली एक पहेली भी दी। उन्होंने छात्रों से कहा कि वे कुछ हफ्तों में चूहों को भूल-भुलैया में से बाहर निकलना सिखाएं। जाते समय उन्होंने दोनों समूहों से अलग-अलग बातें कहीं। पहले समूह से उन्होंने कहा कि उन्होंने खूब छान-बीन कर सबसे होशियार चूहे उन्हें दिए हैं - ऐसे चूहें जिनका दिशा ज्ञान अच्छी तरह विकसित हो। दूसरे समूह से उन्होंने चुपचाप कहा कि अनुवांशिक कारणों से उन्हें दिए गए चूहों से सफलता की ज्यादा उम्मीद नहीं करनी चाहिए।

असल में यह अंतर केवल छात्रों के दिमाग में था, क्योंकि चूहे रैडम-सलेक्शन द्वारा चुने गए थे और हर लिहाज में लगभग एक-जैसे थे। और इसी बात की टेस्टिंग रोजनथाल कर रहे थे - पूर्वाग्रहों का प्रभाव। ट्रेनिंग की अवधि समाप्त होने पर प्रोफेसर ने पाया कि 'अच्छे' करार चूहों ने वास्तव में बहुत अच्छा किया किंतु 'खराब' करार चूहे तो अपनी जगह से हिले तक नहीं!

इन नतीजों से प्रेरित होकर रोजनथाल ने इसी प्रयोग को एक स्कूल में करने की ठानी। मई 1964 में रोजनथाल अपनी टीम के साथ दक्षिण सैन-फ्रांसिसको के एक प्राथमिक स्कूल में गए। स्कूल गरीब इलाके में स्थित था और वहां मजदूरी भी कम थी। यहां पर मैक्सिको, प्यूर्टो रिको आदि देशों से आए गरीब लोग सरकारी अनुदान पर अपनी आजीविका चलाते थे। स्कूल में आने वाले अधिकांश बच्चे गरीब थे।

शोध टीम ने स्कूल के टीचरों से साफ-साफ झूठ बोला। उन्होंने कहा कि वे हावर्ड विश्वविद्यालय से आए हैं और यह शोध वे नैशनल साइंस फाउंडेशन के लिए कर रहे हैं। इतने बड़े-बड़े नाम सुनकर शिक्षकों ने तुरंत स्कूल के दरवाजे उनके लिए खोल दिए। उन बच्चों का पता लगाने के लिए, जिनमें आगे बढ़ने की क्षमता थी, छात्रों को एक नए ढंग का टेस्ट दिया गया।

वास्तव में यह सब झूठ था। बच्चों की मानसिक क्षमता नापने के लिए उनको एक साधारण आई क्यू टेस्ट दिया गया। फिर हरेक कक्षा में 20 प्रतिशत बच्चों को बिना किसी मापदंड के, लाटरी के आधार पर 'बहुत तेज' करार दिया गया। इसी प्रकार लाटरी के आधार पर 20 प्रतिशत बच्चों को 'कमजोर' करार दिया गया। शिक्षकों में इस प्रकार का मानस बना देने के बाद शोध टीम ने अपना काम जारी रखा। चार महीने के बाद एक और टेस्ट दिया गया। तीसरा टेस्ट साल भर बाद और अंतिम टेस्ट दो साल के बाद दिया गया।

इन टेस्टों के नतीजों को देखकर रोजनथाल और उनकी टीम एकदम आश्चर्यचकित रह गई। जो बच्चे कृत्रिम रूप से अच्छा करने योग्य समझे गए थे, उन्होंने अन्य बच्चों की तुलना में कहीं अधिक तेजी से प्रगति की थी! दर्जनों में से आप केवल दो ही उदाहरणों पर नजर डालें तो तस्वीर स्पष्ट हो जाएगी। जोज नाम के मैक्सिकन बालक की 'प्रतिभाशाली' करार दिए जाने से पहले आई क्यू केवल 61 थी। एक साल बाद उसकी आई क्यू 106 हो गई थी! साल भर पहले जो बच्चा पिछड़ा हुआ था, वो एक कृत्रिम नया लेबल लग जाने मात्र से वाकई में मेधावी और गुणी बन गया था। मारिया नाम की एक मैक्सिन लड़की में भी इसी तरह का अभूतपूर्व परिवर्तन आया। उसकी आई क्यू 88 से बढ़कर 128 हो गई! इन रोचक मिसालों के बारे में शिक्षकों का कहना था कि इन बच्चों में 'उत्सुकता', 'मौलिकता' और 'परिस्थितियों के अनुसार खुद को ढालने' की क्षमता थी।

जो बच्चे तेजी से आगे बढ़े उन सबकी प्रगति एक-जैसी नहीं थी। सबसे ऊंची प्रगति पर छलांग, सबसे छोटे बच्चों ने लगाई। इसका कारण शायद यह था, कि छोटे बच्चे अपने शिक्षकों से सबसे अधिक प्रभावित थे।

इससे यह स्पष्ट हुआ कि शिक्षक की पक्षपातपूर्ण धारणाओं और मान्यताओं का बच्चों पर बेहद असर पड़ता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि अच्छे और बुरे छात्र, शिक्षक ही बनाता है। टीम ने पाया कि 'अच्छे करार' बच्चों की तरफ टीचर का रवैया बदला - टीचर ने उनसे ज्यादा बातचीत की, उन्हें प्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रेरित किया और शायद यही उन बच्चों की प्रगति का राज था। परंतु अंत में टीम को इस मान्यता को नकारना पड़ा। बाकी टेस्टों से पता चला कि इन बच्चों ने न केवल भाषा परंतु तार्किक बुद्धि में भी प्रवीणता हासिल की थी। एक कृत्रिम लेबल ने 'पिछड़े' बच्चों को 'होशियार' बना दिया था।

इसका सार यही है कि अगर शिक्षक का छात्र की सफलता में पक्का विश्वास होगा तो बच्चा अवश्य सफल होगा। शिक्षा में शायद यह सबसे सस्ता सुधार होगा। परंतु इसे लागू करना उतना ही मुश्किल काम होगा।